श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

नारायणावतार स्तोत्र

ब्रह्मा जी ने किए जो वर्णित, नारद जी को दिए बता
नारायण निज काज करण को, ये लीला अवतार गता

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
द्वितीयः स्कन्धः
॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

ब्रह्मोवाच

यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्,
क्रौडीं(न्) तनुं(म्) सकलयज्ञमयीमनन्तः ।
अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं(न्),
तं(न्) दं(म्)ष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार ॥ 1॥

क्षितितलोद्+ धरणाय, दं(म्)ष्ट्रया+ द्रिमिव

ब्रह्माजी कहते हैं-अनन्त भगवान ने प्रलय के जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार करने के लिये समस्त यज्ञमय वराह शरीर ग्रहण किया था। आदिदैत्य हिरण्याक्ष जल के अंदर ही लड़ने के लिये उनके सामने आया। जैसे इन्द्र ने अपने वज्र से पर्वतों के पंख काट डाले थे, वैसे ही वराह भगवान ने अपनी दाढ़ों से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

जातो रुचेरजनयत् सुयमान् सुयज्ञ,

आकूतिसूनुरमरानथ दक्षिणायाम् ।

लोकत्रयस्य महतीमहरद् यदाऽऽर्तिं(म्),

स्वायम्भुवेन मनुना हरिरित्यनूक्तः ॥ 2॥

आकू+ तिसू+ नुरमरा+ नथ, स्वायम्+ भुवेन, हरिरित्+ यनूक्तः

फिर उन्हीं प्रभु ने रुचि नामक प्रजापति की पत्नी आकूति के गर्भ से सुयज्ञ के रूप में अवतार ग्रहण किया। उस अवतार में उन्होंने दक्षिणा नाम की पत्नी से सुयम नाम के देवताओं को उत्पन्न किया और तीनों लोकों के बड़े-बड़े संकट हर लिये। इसी से स्वायम्भुव मनु ने उन्हें 'हरि' के नाम से पुकारा।

जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां(म्),

स्त्रीभिः(स्) समं(न्)नवभिरात्मगतिं(म्) स्वमात्रे ।

ऊचे ययाऽऽत्मशमलं(ङ्) गुणसङ्गपङ्क-

मस्मिन् विधूय कपिलस्य गतिं(म्) प्रपेदे ॥ 3॥

समं(न्)नवभिरात्+ मगतिं(म्), ययाऽऽत्+ मशमलं(ङ्)

नारद !कर्दम प्रजापति के घर देवहूति के गर्भ से नौ बहिनों के साथ भगवान ने कपिल के रूप में अवतार ग्रहण किया। उन्होंने अपनी माता को उस आत्मज्ञानका उपदेश किया, जिससे वे इसी जन्म में अपने हृदय के सम्पूर्ण मल- तीनों गुणों की आसक्ति का सारा कीचड़ धोकर कपिल भगवान के वास्तविक स्वरूप को प्राप्त हो गयीं।

अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टो,

दत्तो मयाहमिति यद् भगवान् स दत्तः ।

यत्पादपङ्कजपरागपवित्रदेहा,

योगर्द्धिमापुरुभयीं(यँ) यदुहैहयाद्याः ॥ 4॥

अत्रेरपत्+ यमभिकाङ्+ क्षत, यत्पा+दपङ्कजपरा+गपवित्रदेहा, योगर्+ द्धिमा+ पुरुभयीं(यँ)

महर्षि अत्रि भगवान को पुत्र रूप में प्राप्त करना चाहते थे।उन पर प्रसन्न होकर भगवान ने उनसे एक दिन कहा कि 'मैंने अपने-आपको तुम्हें दे दिया।' इसी से अवतार लेने पर भगवान का नाम 'दत्त' (दत्तात्रेय) पड़ा। उनके चरणकमलों के पराग से अपने शरीर को पवित्र करके राजा यदु और सहस्रार्जुन आदि ने योग की, भोग और मोक्ष दोनों ही सिद्धियाँ प्राप्त कीं।

तप्तं(न्) तपो विविधलोकसिसृक्षया मे,

आदौ सनात् स्वतपसः(स्) स चतुः(स्)सनोऽभूत् ।

प्राक्कल्पसम्प्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं(म्),

सम्यग् जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥ 5॥

विविधलो+ कसिसृक्षया, प्राक्कल्पसम्+ प्लवविनष्टमिहात्+ मतत्त्वं(म्)

नारद! सृष्टि के में मैंने विविध लोकों को रचने की इच्छा से तपस्या की। मेरे उस अखण्ड तप से प्रसन्न होकर उन्होंने 'तप' अर्थवाले 'सन' नाम से युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार के रूप में अवतार ग्रहण किया। इस अवतार में उन्होंने प्रलय के कारण पहले कल्प के भूले हुए आत्मज्ञान का ऋषियों के प्रति यथावत् उपदेश किया, जिससे उन लोगों ने तत्काल परम तत्त्व का अपने हृदय में साक्षात्कार कर लिया।

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां(न्),

नारायणो नर इति स्वतपः(फ्)प्रभावः ।

दृष्ट्वाऽऽत्मनो भगवतो नियमावलोपं(न्),

देव्यस्त्वनङ्गपृतना घटितुं(न्) न शेकुः ॥ 6॥

दक्षदुहितर् + यजनिष्ट, देव्यस् + त्वनङ्+ गपृतना

धर्मकी पत्नी दक्षकन्या मूर्ति के गर्भ से वे नर-नारायण के रूप में प्रकट हुए। उनकी तपस्या का प्रभाव उन्हीं के जैसा है। इन्द्र की भेजी हुई काम की सेना अप्सराएं उनके सामने जाते ही अपना स्वभाव खो बैठीं। वे अपने हाव-भाव से उन आत्मस्वरूप भगवान की तपस्या में विघ्न नहीं डाल सकीं।

कामं(न्) दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या,

रोषं(न्) दहन्तमुत ते न दहन्त्यसह्यम् ।

सोऽयं(यँ) यदन्तरमलं(म्) प्रविशन् बिभेति,

कामः(ख्) कथं(न्) नु पुनरस्य मनः(श्) श्रयेत ॥ 7॥

दहन्+ त्यसह्यम्

नारद। शंकर आदि महानुभाव अपनी रोषभरी दृष्टि से कामदेव को जला देते हैं, परंतु अपने-आपको जलाने वाले असह्य क्रोध को वे नहीं जला पाते। वही क्रोध नर-नारायण के निर्मल हृदय में प्रवेश करने के पहले ही डर के मारे काँप जाता है। फिर भला उनके हृदय में काम का प्रवेश तो हो ही कैसे सकता है।

विद्धः(स्) सपत्न्युदितपत्रिभिरन्ति राज्ञो,

बालोऽपि सन्नुपगतस्तपसे वनानि ।

तस्मा अदाद् ध्रुवगतिं(ङ्) गृणते प्रसन्नो,

दिव्याः(स्) स्तुवन्ति मुनयो यदुपर्यधस्तात् ॥ 8॥

सपत् + न्युदित+ पत्रिभि+ रन्ति, सन्नुपगतस्+ तपसे, यदुपर्+ यधस्तात्

अपने पिता राजा उत्तानपाद के पास बैठे हुए पाँच वर्ष के बालक ध्रुव को उनकी सौतेली माता सुरुचि ने अपने वचन बाणों से बेध दिया था। इतनी छोटी अवस्था होने पर भी वे उस ग्लानि से तपस्या करने के लिये वन में चले गये। उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान प्रकट हुए और उन्होंने ध्रुव को ध्रुव पद का वरदान दिया। आज भी ध्रुव के ऊपर-नीचे प्रदक्षिणा करते हुए दिव्य महर्षिगण उनकी स्तुति करते रहते हैं।

यद्वेनमुत्पथगतं(न्) द्विजवाक्यवज्र-

विप्लुष्टपौरुषभगं(न्) निरये पतन्तम् ।

त्रात्वार्थितो जगति पुत्रपदं(ञ्) च लेभे,

दुग्धा वसूनि वसुधा सकलानि येन ॥ 9॥

यद्वेनमुत्+ पथगतं(न्), विप्लुष्टपौ+ रुषभगं(न्)

कुमार्गगामी वन का ऐश्वर्य और पौरुष ब्राह्मणों के हुंकार रूपी वज्र से जलकर भस्म हो गया। वह नरक में गिरने लगा। ऋषियों की प्रार्थना भगवान ने उसके शरीरमन्थन से पृथु के रूप में अवतार धारण कर उसे नरकों से उबारा और इस प्रकार 'पुत्र' शब्द को चरितार्थ किया। उसी अवतार में पृथ्वी को गाय बनाकर उन्होंने उससे जगत के लिये समस्त ओषधियों का दोहन किया।

नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्-

यो वै चचार समदृग् जडयोगचर्याम् ।

यत्पारमहंम्यमृषयः(फ्) पदमामनन्ति,

स्वस्थः(फ्) प्रशान्तकरणः(फ्) परिमुक्तसङ्गः ॥ 10॥

यत्पा+ रमहंम्+ यमृषयः(फ्)

राजा नाभि की पत्नी सुदेवी के गर्भ से भगवान ने ऋषभ देव के रूप में जन्म लिया। इस अवतार में समस्त आसक्तियों से रहित रहकर, अपनी इन्द्रियों और मन को अत्यन्त शान्त करके एवं अपने स्वरूप में स्थित होकर समदर्शी के रूप में उन्होंने जड़ों की भाँति योगचर्या का आचरण किया। इस स्थिति को महर्षिलोग परमहंसपद अथवा अवधूतचर्या कहते हैं।

सत्रे ममास भगवान् हयशीरषाथो,

साक्षात् स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः ।

छन्दोमयो मखमयोऽखिलदेवतात्मा,

वाचो बभूवुरुशतीः(श्) श्वसतोऽस्य नस्तः ॥ 11॥

यज्ञपुरुषस्+ तपनीयवर्णः, मखमयोऽ+ खिलदेवतात्मा

इसके बाद स्वयं उन्हीं यज्ञपुरुष ने मेरे यज्ञ में स्वर्ण के समान कान्तिवाले हयग्रीव के रूप में अवतार ग्रहण किया। भगवान का वह विग्रह वेदमय, यज्ञमय और सर्वदेवमय है। उन्हीं की नासिका से श्वास के रूप में वेदवाणी प्रकट हुई।

मत्स्यो युगान्तसमये मनुनोपलंब्धः,

क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः ।

विस्रं(म्)सितानुरुभये सलिले मुखान्मे,

आदाय तंत्र विजहार ह वेदमार्गान् ॥ 12॥

निखिलजी+ वनिका+ यकेतः, विस्रं(म्)सिता+ नुरुभये

चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में भावी मनु सत्यव्रत ने मत्स्य रूप में भगवान को प्राप्त किया था। उस समय पृथ्वी रूप नौका के आश्रय होने के कारण वे ही समस्त जीवों के आश्रय बने। प्रलय के उस भयंकर जल में मेरे मुख से गिरे हुए वेदों को लेकर वे उसी में विहार करते रहे।

क्षीरोदधावमरदानवयूथपाना-

मुन्मंथ्नतामममृतलंब्धय आदिदेवः।

पृष्ठेन कंच्छपवपुर्विदधार गोत्रं(न्),

निंद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषाणकंण्डूः ॥ 13॥

क्षीरोदधा+ वमरदा+ नवयूथपाना, मुन्मथ् + नता+ ममृतलब्धय

कच्छपवपुर्+ विदधार, निद्राक्षणोऽ+ द्रिपरिवर्+ तकषा+ णकण्डूः

जब मुख्य-मुख्य देवता और दानव अमृत की प्राप्ति के लिये। क्षीरसागर को मथ रहे थे, तब भगवान ने कच्छप के रूप में अपनी पीठ पर मन्दराचल धारण किया। उस समय पर्वत के घूमने के कारण उसकी रगड़ से उनकी पीठ की खुजलाहट थोड़ी मिट गयी, जिससे वे कुछ क्षणों तक सुख की नींद सो सके।

त्रैविंष्टपोरुभयहा स नृसिं(म्)हरूपं(ङ्),

कृंत्वा भ्रमद्भ्रुकुटिदं(म्)ष्ट्रकरालवक्त्रम् ।

दैत्येन्द्रमाशु गदयाभिपतंन्तमारा-

दूरौ निपात्य विददार नखैः(स्) स्फुरंन्तम् ॥ 14॥

त्रैविष्टपो+ रुभयहा, भ्रमद्+ भ्रुकुटिदं(म्)ष्ट्र+ करालवक्त्रम्

दैत्येन् + द्रमाशु, गदया+ भिपतन्+ तमारा

देवताओं का महान भय मिटाने के लिये उन्होंने नृसिंह का रूप धारण किया। फड़कती हुई भौहों और तीखी दाढ़ों से उनका मुख बड़ा भयावना लगता था। हिरण्यकशिपु उन्हें देखते ही हाथ में गदा लेकर उन पर टूट पड़ा। इस पर भगवान नृसिंह ने दूर से ही उसे पकड़कर अपनी जाँघों पर डाल लिया और उसके छटपटाते रहने पर भी अपने नखों से उसका पेट फाड़ डाला।

अन्तः(स्)सरस्युरुबलेन पदे गृहीतो,

ग्राहेण यूथपतिरम्बुजहस्त आर्तः।

आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ,

तीर्थश्रवः(श्) श्रवणमङ्गलनामधेय ॥ 15॥

अन्तः(स्)सरस्+ युरुबलेन, यूथपतिरम्+ बुजहस्त

आहेदमा+ दिपुरुषा+ खिललो+ कनाथ, श्रवणमङ्+ गलनामधेय

बड़े भारी सरोवर में महाबली ग्राह ने गजेन्द्र का पैर पकड़ लिया। जब बहुत थककर वह घबरा गया, तब उसने अपनी सूँड़ में कमल लेकर भगवान को पुकारा-'हे आदिपुरुष ! हे समस्त लोकों के स्वामी! हे श्रवण मात्र से कल्याण करनेवाले !

श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेयश्-

चक्रायुधः(फ्) पतगराजभुजाधिरूढः ।

चक्रेण नक्रवदनं(वँ) विनिपाट्य तस्माद्-

धस्ते प्रगृह्य भगवान् कृपयोज्जहार ॥ 16॥

हरिस्+ तमरणार्+ थिनम+ प्रमेयश्, पतगरा+ जभुजा+ धिरूढः

उसकी पुकार सुनकर अनन्तशक्ति भगवान चक्रपाणि गरुड़ की पीठ पर चढ़कर वहाँ आये और अपने चक्र से उन्होंने ग्राह का मस्तक उखाड़ डाला। इस प्रकार कृपा परवश भगवान ने अपने शरणागत गजेन्द्र को सूँड पकड़कर उस विपत्ति से उसका उद्धार किया।

ज्यायान् गुणैरवरजोऽप्यदितेः(स्) सुतानां(लँ),

लोकान् विचक्रम इमान् यदथाधियज्ञः।

क्ष्मां(वँ) वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन,

याच्ञामृते पथि चरन् प्रभुभिर्न चाल्यः ॥ 17॥

गुणै+ रवरजोऽ+ प्यदितेः(स्), त्रिपदच्+ छलेन

भगवान वामन अदिति के पुत्रों में सबसे छोटे थे, परन्तु गुणों की दृष्टि से वे सबसे बड़े थे। क्योंकि यज्ञपुरुष भगवान ने इस अवतार में बलि के संकल्प छोड़ते ही सम्पूर्ण लोकों को अपने चरणों से ही

नाप लिया था। वामन बनकर उन्होंने तीन पग पृथ्वी के बहाने बलि से सारी पृथ्वी ले तो ली, परन्तु इससे यह बात सिद्ध कर दी कि सन्मार्ग पर चलने वाले पुरुषों को याचना के सिवा और किसी उपाय से समर्थ पुरुष भी अपने स्थान से नहीं हटा सकते, ऐश्वर्य से च्युत नहीं कर सकते।

नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौच-

मापः(श्) शिखा धृतवतो विबुधाधिपत्यम् ।

यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्य-

दात्मानमङ्ग शिरसा हरयेऽभिमेने ॥ 18॥

बले+ रयमुरु+ क्रमपा+ दशौच, विबुधा+ धिपत्यम्

दैत्यराज बलि ने अपने सिर पर स्वयं वामन भगवान का चरणामृत धारण किया था। ऐसी स्थिति में उन्हें जो देवताओं के राजा इन्द्र की पदवी मिली, इसमें कोई बलि का पुरुषार्थ नहीं था। अपने गुरु शुक्राचार्य के मना करने पर भी वे अपनी प्रतिज्ञा के विपरीत कुछ भी करने को तैयार नहीं हुए। और तो क्या, भगवान का तीसरा पग पूरा करने के लिये उनके चरणों में सिर रखकर उन्होंने अपने-आपको भी समर्पित कर दिया।

तुभ्यं(ञ्) च नारद भृशं(म्) भगवान् विवृद्ध-

भावेन साधु परितुष्ट उवाच योगम्।

ज्ञानं(ञ्) च भागवतमात्मसतत्त्वदीपं(यँ),

यद्वासुदेवशरणा विदुरञ्जसैव ॥ 19॥

भागवतमात्+ मसतत् + त्वदीपं(यँ), यद्वासुदे+ वशरणा

नारद । तुम्हारे अत्यन्त प्रेमभाव से परम प्रसन्न होकर हंस के रूप में भगवान ने तुम्हें योग,ज्ञान और आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने वाले भागवत धर्म का उपदेश किया। यह केवल भगवान के शरणागत भक्तों को ही सुगमता से प्राप्त होता है।

चक्रं(ञ्) च दिक्ष्वविहतं(न्) दशसु स्वतेजो,

मन्वन्तरेषु मनुवं(म्)शधरो बिभर्ति ।

दुष्टेषु राजसु दमं(वँ) व्यदधात् स्वकीर्तिं(म्),

सत्ये त्रिपृष्ठ उशतीं(म्) प्रथयं(म्)श्चरित्रैः ॥ 20॥

वे ही भगवान स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरों में मनु के रूप में अवतार लेकर मनुवंश की रक्षा करते हुए दसों दिशाओंगे अपने सुदर्शनचक्र के समान तेज से बेरोक-टोक निष्कण्टक राज्य करते हैं। तीनों लोकों के ऊपर सत्यलोक तक उनके चरित्रों की कमनीय कीर्ति फैल जाती है और उसी रूप में वे समय-समय पर पृथ्वी के भारभूत दुष्ट राजाओं का दमन भी करते रहते हैं।

धन्वन्तरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्तिर्-

नाम्ना नृणां(म्) पुररुजां(म्) रुज आशु हन्ति ।

यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध,

आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥ 21॥

भागममृता+ युरवा+ वरुन्ध, वेदमनुशास्+ त्यवतीर्य

स्वनामधन्य भगवान धन्वन्तरि अपने नाम से ही बड़े-बड़े रोगियों के रोग तत्काल नष्ट कर देते हैं। उन्होंने अमृत पिलाकर देवताओं को अमर कर दिया और दैत्यों के द्वारा हरण किये हुए उनके यज्ञ-भाग उन्हें फिर से दिला दिये। उन्होंने ही अवतार लेकर संसार में आयुर्वेद का प्रवर्तन किया।

क्षत्रं(ङ्) क्षयाय विधिनोपभृतं(म्) महात्मा,

ब्रह्मध्रुगुज्झितपथं(न्) नरकार्तिलिप्सु ।

उद्धन्त्यसाववनिकण्टकमुग्रवीर्यस्-

त्रिः(स्)सप्तकृत्व उरुधारपरश्वधेन ॥ 22॥

ब्रह्मध्रुगुज्+ झितपथं(न्), उद्धन्+ त्यसा+ ववनिकण्+ टकमुग्रवीर्यस्

जब संसार में ब्राह्मण द्रोही आर्यमर्यादा का उल्लङ्घन करनेवाले नारकीय क्षत्रिय अपने नाश के लिये ही दैववश बढ़ जाते हैं और पृथ्वी के काँटें बन जाते हैं, तब भगवान महापराक्रमी परशुराम के रूप में अवतीर्ण होकर अपनी तीखी धार वाले फरसे से इक्कीस बार उनका संहार करते हैं।

अस्मत्प्रसादसुमुखः(ख्) कलया कलेश,

इक्ष्वाकुवं(म्)श अवतीर्य गुरोर्निदेशे ।

तिष्ठन् वनं(म्) सदयितानुज आविवेश,

यस्मिन् विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत् ॥ 23॥

अस्मत् + प्रसादसुमुखः(ख्), इक्ष्वा+ कुवं(म्)श, आर्तिमार्+ च्छत्

मायापति भगवान हम पर अनुग्रह करने के लिये अपनी कलाओं- भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण के साथ श्रीराम के रूप से इश्वाकु के वंश में अवतीर्ण होते हैं। इस अवतार में अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये अपनी पत्नी और भाई के साथ वे वन में निवास करते हैं। उसी समय उनसे विरोध करके रावण उनके हाथों मरता है।

यस्मा अदादुदधिरूढभयाङ्गवेपो,

मार्गं(म्) सपद्यरिपुरं(म्) हरवद् दिधक्षोः ।

द्वरे सुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या,

तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥ 24॥

अदा+ दुदधिरू+ ढभयाङ्+ गवेपो, सुहृन् + मथितरो+ षसुशो+ णदृष्ट्या

तातप्यमा+ नमकरो+ रगनक्रचक्रः

त्रिपुर विमानको जलाने के लिये उद्यत शंकर के समान, जिस समय भगवान राम शत्रु को नगरी लंका को भस्म करने के लिये समुद्र तट पर पहुँचते हैं, उस समय सीता के वियोग के कारण बढ़ी हुई क्रोधाग्नि से उनकी आँखें इतनी लाल हो जाती हैं कि उनको दृष्टि से ही समुद्र के मगरमच्छ, साँप और ग्राह आदि जीव जलने लगते हैं और भय से थर-थर काँपता हुआ समुद्र झटपट उन्हें मार्ग दे देता है।

वक्षः(स्)स्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाह-

दन्तैर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम् ।

सद्योऽसुभिः(स्) सह विनेष्यति दारहर्तुर्-

विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये ॥ 25॥

वक्षः(स्)स्थलस्+ पर्शरुग् + णमहेन्द्रवाह, दन्तैर्विडम्+ बितककुब्+ जुष

विस्फूर्+ जितैर्धनुष

जब रावण की कठोर छाती से टकरा कर इन्द्र के वाहन ऐरावत के दाँत चूर-चूर होकर चारों ओर फैल गये थे, जिससे दिशाएँ सफेद हो गयी थीं, तब दिग्विजयी रावण घमंड से फूलकर हँसने लगा था। वहीं रावण जब श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी सीताजी को चुराकर ले जाता है और लड़ाई के मैदान में उनसे लड़ने के लिये गर्वपूर्वक आता है, तब भगवान श्रीराम के धनुष की टङ्कार से ही उसका यह घमंड प्राणों के साथ तत्क्षण विलीन हो जाता है।

भूमेः(स्) सुरेतरवरूथविमर्दितायाः(ख्)

क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः ।

जातः(ख्) करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः(ख्)

कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ॥ 26॥

सुरेतरवरू+ थविमर्दितायाः(ख्), जना+ नुपलक्ष्य+ मार्गः(ख्)

चात्+ ममहिमो+ पनिबन् + धनानि

जिस समय झुंड के झुंड दैत्य पृथ्वी को रौंद डालेंगे उस समय उसका भार उतारने के लिये भगवान अपने सफेद और काले केश से बलराम और श्रीकृष्ण के रूप में कलावतार ग्रहण करेंगे। वे अपनी महिमा को प्रकट करनेवाले इतने अद्‌भुत चरित्र करेंगे कि संसार के मनुष्य उनकी लीलाओं का रहस्य बिलकुल नहीं समझ सकेंगे।

तोकेन जीवहरणं(यँ) यदुलूकिकायास्-

त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः ।

यद् रिङ्गतान्तरगतेन दिविस्पृशोर्वा,

उन्मूलनं(न्) त्वितरथार्जुनयोर्न भाव्यम् ॥ 27॥

रिङ्गतान्+ तरगतेन, त्वितरथार्+ जुनयोर्न

बचपन में ही पूतना के प्राण हर लेना, तीन महीने की अवस्था में पैर उछालकर बड़ा भारी छकड़ा उलट देना और घुटनो के बल चलते-चलते आकाश को छूने वाले यमलार्जुन वृक्षों के बीच जाकर उन्हें उखाड़ डालना- ये सब ऐसे कर्म है, जिन्हें भगवान के सिवा और कोई नहीं कर सकता।

यद् वै व्रजे व्रजपशून् विषतोयपीतान्,

पालां(म्)स्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या ।

तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्व-

मुच्चाटयिष्यदुरगं(वँ) विहरन् ह्रदिन्याम् ॥ 28॥

पालां(म्)स्+ त्वजी+वयदनुग्रह+ दृष्टिवृष्ट्या, तच्छुद्+ धयेऽतिविषवीर्+ यविलोलजिह्व

मुच्चाटयिष्+ यदुरगं(वँ)

जब कालिया नाग के विष से दूषित हुआ यमुना जल पीकर बछड़े और गोप बालक मर जायेंगे, तब वे अपनी सुधामयी कृपा दृष्टि की वर्षा से ही उन्हें जीवित कर देंगे और यमुना जल को शुद्ध करने के लिये वे उसमें बिहार करेंगे तथा विष की शक्ति से जीभ लपलपाते हुए कालिया नाग को वहाँ से निकाल देंगे।

तत् कर्म दिव्यमिव यन्निशि निःशयानं(न्),

दावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने ।

उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितान्तकालं(न्),

नेत्रे पिधाय्य सबलोऽनधिगम्यवीर्यः ॥ 29॥

व्रजमतोऽ+ वसितान् + तकालं(न्), सबलोऽ+ नधिगम् + यवीर्यः

उसी दिन रात को जब सब लोग वहीं यमुना तट पर सो जायँगे और दावाग्नि से आस-पास का मुँज का वन चारों ओर से जलने लगेगा, तब बलरामजी के साथ वे प्राणसंकट में पड़े हुए व्रजवासियों को उनकी आँखें बंद कराकर उस अग्नि से बचा लेंगे। उनकी यह लीला भी अलौकिक हो होगी। उनकी शक्ति वास्तव में अचिन्त्य है।

गृह्णीत यद् यदुपबन्धममुष्य माता,

शुल्बं(म्) सुतस्य न तु तत् तदमुष्य माति ।

यज्जृम्भतोऽस्य वदने भुवनानि गोपी,

सं(वँ)वीक्ष्य शङ्कितमनाः(फ्) प्रतिबोधिताऽऽसीत् ॥ 30॥

यदुपबन्+धममुष्य, प्रतिबो+ धिताऽऽसीत्

उनकी माता उन्हें बाँधने के लिये जो-जो रस्सी लायेंगी वही उनके उदर में पूरी नहीं पड़ेगी, दो अंगुल छोटी ही रह जायगी तथा जँभाई लेते समय श्रीकृष्ण के मुख में चौदहों भुवन देखकर पहले तो यशोदा भयभीत हो जायेंगी, परन्तु फिर वे सँभल जायेगी।

नन्दं(ञ्) च मोक्ष्यति भयाद् वरुणस्य पाशाद्,

गोपान् बिलेषु पिहितान् मयसूनुना च ।

अह्न्यापृतं(न्) निशि शयानमतिश्रमेण,

लोकं(वँ) विकुण्ठमुपनेष्यति गोकुलं(म्) स्म ॥ 31॥

विकुण्ठ+ मुपनेष्यति

वे नन्द बाबा को अजगर के भय से और वरुण के पाश से छुड़ायेंगे।मय दानव का पुत्र व्योमासुर व गोपबालों को पहाड़ की गुफाओं में बन्द कर देगा, तब वे उन्हें भी वहाँ से बचा लायेंगे। गोकुल के लोगों को, जो दिनभर तो काम-धंधों में व्याकुल रहते हैं और रातको अत्यन्त थककर सो जाते हैं, साधनाहीन होने पर भी, वे अपने परमधाम में ले जायेंगे।

गोपैर्मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय,

देवेऽभिवर्षति पशून् कृपया रिरक्षुः ।

धर्तोच्छिलीन्ध्रमिव सप्त दिनानि सप्त-

वर्षो महीध्रमनघैककरे सलीलम् ॥ 32॥

धर्तोच् + छिलीन्+ ध्रमिव, महीध्र+ मनघैककरे

निष्पाप नारद! जब श्रीकृष्ण की सलाह से गोपलोग इन्द्र का यज्ञ बंद कर देंगे, तब इन्द्र व्रज भूमि का नाश करने के लिये चारों ओर से मूसलधार वर्षा करने लगेंगे। उससे उनकी तथा उनके पशुओं की रक्षा करने के लिये भगवान कृपापरवश हो सात वर्ष की अवस्था में ही सात दिनों तक गोवर्द्धन पर्वत को एक ही हाथ से छत्रक पुष्प की तरह खेल-खेल में ही धारण किये रहेंगे।

क्रीडन् वने निशि निशाकररश्मिगौर्यां(म्),

रासोन्मुखः(ख्) कलपदायतमूर्च्छितेन ।

उद्दीपितस्मररुजां(वँ) व्रजभृद्वधूनां(म्),

हर्तुर्हरिष्यति शिरो धनदानुगस्य ॥ 33॥

निशा+ कररश्+ मिगौर्यां(म्), कलपदा+ यतमूर्च्छितेन,

उद्दीपितस्+ मररुजां(वँ), व्रजभृद्+ वधूनां(म्)

वृन्दावन में बिहार करते हुए रास करने की इच्छा से वे रात के समय जब चन्द्रमा की उज्ज्वल चांदनी चारों ओर छिटक रही होगी, अपनी बांसुरी पर मधुर संगीत की लम्बी तान छेड़ेंगे। उससे प्रेम विवश होकर आयी हुई गोपियों को जब कुबेर का सेवक शंखचूड़ हरण करेगा, तब वे उसका सिर उतार लेंगे।

ये च प्रलम्बखरदर्दुरकेश्यरिष्ट-

मल्लेभकं(म्)सयवनाः(ख्) कुजपौण्ड्रकाद्याः ।

अन्ये च शाल्वकपिबल्वलदन्तवक्त्र-

सप्तोक्षशम्बरविदूरथरुक्मिमुख्याः ॥ 34॥

प्रलम्ब+ खरदर्+ दुरकेश्+ यरिष्ट, कुजपौण्ड्र+ काद्याः

शाल्+ वकपिबल्+ वलदन्तवक्त्र, सप्तो+ क्षशम्+ बरविदू+ रथरुक्मिमुख्याः

ये वा मृधे समितिशालिन आत्तचापाः(ख्),

काम्बोजमत्स्यकुरुकैकयसृञ्जयाद्याः।

यास्यन्त्यदर्शनमलं(म्) बलपार्थभीम-

व्याजाह्वयेन हरिणा निलयं(न्) तदीयम् ॥ 35॥

काम्बो+ जमत्स्य+ कुरुकै+ कयसृज्+ जयाद्याः, यास्यन्त्य+ दर्शनमलं(म्)

और भी बहुत-से प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी, अरिष्टासुर, आदि दैत्य, चाणूर आदि पहलवान, कुवलयापीड हाथी, कंस, कालयवन, भौमासुर, मिथ्यावासुदेव, शाल्व, द्विविद वानर, बल्वल, दन्तवक्त्र, राजा नग्नजित के सात बैल, शम्बरासुर, विदूरथ और रुक्मी आदि तथा काम्बोज, मत्स्य, कुरु, कैकय और सृञ्जय आदि देशों के राजा लोग एवं जो भी योद्धा धनुष धारण करके युद्ध के मैदान में सामने आयेंगे, वे सब बलराम, भीमसेन और अर्जुन आदि नामों की आड़ में स्वयं भगवान के द्वारा मारे जाकर उन्हीं के धाम में चले जायँगे।

कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां(म्),

स्तोकायुषां(म्) स्वनिगमो बत दूरपारः ।

आविर्हितस्त्वनुयुगं(म्) स हि सत्यवत्यां(वँ),

वेदद्रुमं(वँ) विटपशो विभजिष्यति स्म ॥ 36॥

मीलितधिया+ मवमृश्य, आविर्+ हितस्+ त्वनुयुगं(म्)

समय के फेर से लोगों की समझ कम हो जाती है, आयु भी कम होने लगती है। उस समय जब भगवान देखते हैं कि अब ये लोग मेरे तत्व को बतलाने वाली वेदवाणी को समझने में असमर्थ होते जा रहे हैं, तब प्रत्येक कल्प में सत्यवती के गर्भ से व्यास के रूप में प्रकट होकर वे वेदरूपी वृक्ष का विभिन्न शाखाओं के रूप में विभाजन कर देते हैं।

देवद्विषां(न्) निगमवर्त्मनि निष्ठितानां(म्),

पूर्भिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः।

लोकान् घ्नतां(म्) मतिविमोहमतिप्रलोभं(वँ),

वेषं(वँ) विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम् ॥ 37॥

विहिता+ भिरदृश्+ यतूर्भिः, मतिविमो+ हमति+ प्रलोभं(वँ)

देवताओं के शत्रु दैत्य लोग भी वेदमार्ग का सहारा लेकर मय दानव के बनाये हुए अदृश्य वेगवाले नगरों में रहकर लोगों का सत्यानाश करने लगेंगे, तब भगवान लोगों को बुद्धि में मोह और अत्यंत लोभ उत्पन्न करने वाला वेष धारण करके बुद्ध के रूप में बहुत-से उपधर्मों का उपदेश करेंगे।

यर्ह्यालयेष्वपि सतां(न्) न हरेः(ख्) कथाः(स्) स्युः(फ्),

पाखण्डिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः।

स्वाहा स्वधा वषडिति स्म गिरो न यत्र,

शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान् युगान्ते ॥ 38॥

यर्ह्या+लयेष्वपि

कलियुग के अंत में जब सत्पुरुषों के घर भी भगवान को कथा होने में बाधा पड़ने लगेगी; ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पाखण्डी और शूद्र राजा हो जायेंगे, यहाँ तक कि कहीं भी 'स्वाहा', 'स्वधा' और'वषट्कार' की ध्वनि-देवता- पितरों के यज्ञ श्राद्ध की बात तक नहीं सुनायी पड़ेगी, तब कलियुग का शासन करने के लिये भगवान कल्कि अवतार ग्रहण करेंगे।

सर्गे तपोऽहमृषयो नव ये प्रजेशाः(स्),

स्थाने च धर्ममखमन्वमरावनीशाः।

अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या,

मायाविभूतय इमाः(फ्) पुरुशक्तिभाजः ॥ 39॥

धर्ममखमन्+ वमरा+ वनीशाः, त्वधर्+ महरमन्+ युवशा+ सुराद्या

जब संसार की रचना का समय होता है, तब तपस्या, नौ प्रजापति, मरीचि आदि ऋषि और मेरे रूप में; जब सृष्टि की रक्षा का समय होता है, तब धर्म, विष्णु, मनु, देवता और राजाओं के रूप में तथा

जब सृष्टि के प्रलय का समय होता है, तब अधर्म, रुद्र तथा क्रोधवश नाम के सर्प एवं दैत्य आदि के रूप में सर्वशक्तिमान भगवान की माया- विभूतियाँ ही प्रकट होती हैं।

विष्णोर्नु वीर्यगणनां(ङ्) कतमोऽर्हतीह,

यः(फ्) पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजां(म्)सि ।

चस्कम्भ यः(स्) स्वरहसास्खलता त्रिपृष्ठं(यँ),

यस्मात् त्रिसाम्यसदनादुरु कम्पयानम् ॥ 40॥

स्वरहसास्+ खलता, त्रिसाम्+ यसदना+ दुरु

अपनी प्रतिभा के बल से पृथ्वी के एक-एक धूलि कण को गिन चुकने पर भी जगत में ऐसा कौन पुरुष है, जो भगवान की शक्तियों की गणना कर सके। जब वे त्रिविक्रम-अवतार लेकर त्रिलोकी को नाप रहे थे, उस समय उनके चरणों के अदम्य वेग से प्रकृति रूप अन्तिम आवरण से लेकर सत्यलोक तक सारा ब्रह्माण्ड काँपने लगा था। तब उन्होंने ही अपनी शक्ति से उसे स्थिर किया था।

नान्तं(वँ) विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते,

मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ।

गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः(श्),

शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥ 41॥

समस्त सृष्टि की रचना और संहार करनेवाली माया उनकी एक शक्ति है। ऐसी-ऐसी अनन्त शक्तियों के आश्रय उनके स्वरूप को न मैं जानता हूँ और न वे तुम्हारे बड़े भाई सनकादि ही; फिर दूसरों का तो कहना ही क्या है। आदिदेव भगवान शेष सहस्त्र मुख से उनके गुणों का गायन करते आ रहे हैं, परन्तु वे अब भी उसके अन्त की कल्पना नहीं कर सके।

येषां(म्) स एव भगवान् दययेदनन्तः(स्),

सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ।

ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां(न्),

नैषां(म्) ममाहमिति धीः(श्) श्वशृगालभक्ष्ये ॥ 42॥

सर्वात्मनाऽऽ+ श्रितपदो, दुस्तरा+ मतितरन्ति, श्वशृगा+ लभक्ष्ये

जो निष्कपट भाव से अपना सर्वस्व और अपने-आपको भी उनके चरण कमलों में निछावर कर देते हैं, उनपर वे अनन्त भगवान स्वयं ही अपनी ओर से दया करते हैं और उनकी दया के पात्र ही उनकी दुस्तर माया का स्वरूप जानते हैं और उसके पार जा पाते हैं। वास्तव में ऐसे पुरुष ही कुत्ते और सियारों के कलेवारूप अपने और पुत्रादिके शरीर में 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' ऐसा भाव नहीं करते।

वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगमायां(यँ),

यूयं(म्) भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः ।

पत्नी मनोः(स्) स च मनुश्च तदात्मजाश्च,

प्राचीनबर्हिर्ऋभुरङ्ग उत ध्रुवश्च ॥ 43॥

प्राचीनबर्+ हिर्+ ऋभुरङ्ग

प्यारे नारद ! परम पुरुष की उस योगमाया को मैं जानता हूँ तथा तुमलोग, भगवान शंकर, दैत्यकुल-भूषण प्रह्लाद, शतरूपा, मनु, मनुपुत्र प्रियव्रत आदि प्राचीनबर्हि, ऋभु और ध्रुव भी जानते हैं।

इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधि-

रघ्वम्बरीषसगरा गयनाहुषाद्याः ।

मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवा,

देवव्रतो बलिरमूर्त्तरयो दिलीपः ॥ 44॥

इक्ष्वाकुरै+ लमुचुकुन्द+ विदेहगाधि, रघ्वम्+ बरीषसगरा

मान्धात्रलर्+ कशतधन्+ वनुरन्तिदेवा, बलिरमूर्त्+ तरयो

सौभर्युतङ्कशिबिदेवलपिप्पलाद-

सारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ।

येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेन्द्रदत्त-

पार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥ 45॥

सौभर्+ युतङ्कशिबिदे+ वलपिप्पलाद, सारस्वतोद्+ धवपराशरभू+ रिषेणाः

विभीषणहनू+ मदुपेन्+ द्रदत्त, पार्थार्ष्टिषे+ णविदुर+ श्रुतदेववर्याः

इनके सिवा इक्ष्वाकु, पुरूरवा, मुचुकुन्द, जनक, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गय, ययाति आदि तथा मान्धाता, अलर्क, शतधन्वा, अनु, रन्तिदेव, भीष्म, बलि अमूर्त्तरय, दिलीप, सौभरि, उत्तंक, शिबि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, भूरिषेण एवं विभीषण, हनुमान, शुकदेव, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर और श्रुतदेव आदि महात्मा भी जानते हैं।

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां(म्),

स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ।

यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्-

तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥ 46॥

विदन्+ त्यतितरन्ति, स्त्रीशू+ द्रहूणशबरा

यद्यद्भुत+ क्रमपरा+ यणशी+ लशिक्षास्

।।जिन्हें भगवान के प्रेमी भक्तों का-सा स्वभाव बनाने की शिक्षा मिली है, वे स्त्री, शूद्र, हूण, भील और पाप के कारण पशु-पक्षी आदि योनियों में रहनेवाले भी भगवान की मायाका रहस्य जान जाते हैं और इस संसार सागर से सदा के लिये पार हो जाते हैं; फिर जो लोग वैदिक सदाचार का पालन करते हैं, उनके सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है।

शश्वत् प्रशान्तमभयं(म्) प्रतिबोधमात्रं(म्),

शुद्धं(म्) समं(म्) सदसतः(फ्) परमात्मतत्त्वम् ।

शब्दो न यत्र पुरुकारकवान् क्रियार्थो,

माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ॥ 47॥

परमात्मा का वास्तविक स्वरूप एकरस, शान्त, अभय एवं केवल ज्ञानस्वरूप है। न उसमें माया का मल है और न तो उसके द्वारा रची हुई विषमताएँ ही। वह सत् और असत् दोनों से परे है। किसी भी वैदिक या लौकिक शब्द की वहाँ तक पहुँच नहीं है। अनेक प्रकार के साधनों से सम्पन्न होने वाले कर्मों का फल भी वहाँ तक नहीं पहुँच सकता। और तो क्या, स्वयं माया भी उसके सामने नहीं जा पाती, लजाकर भाग खड़ी होती है।

तद् वै पदं(म्) भगवतः(फ्) परमस्य पुं(म्)सो,

ब्रह्मेति यद् विदुरजस्रसुखं(वँ) विशोकम् ।

सध्यङ् नियम्य यतयो यमकर्तहेतिं(ञ्),

जह्युः(स्) स्वराडिव निपानखनित्रमिन्द्रः ॥ 48॥

निपा+ नखनित्रमिन्द्रः

परमपुरुष भगवान का वही परमपद है। महात्मा लोग उसी का शोकरहित अनन्त आनन्द स्वरूप ब्रह्म के रूप में साक्षात्कार करते हैं। संयमशील पुरुष उसी में अपने मन को समाहित करके स्थित हो जाते हैं। जैसे इन्द्र स्वयं मेघरूप से विद्यमान होने के कारण जल के लिये कुआँ खोदने की कुदाल नहीं रखते वैसे ही वे भेद दूर करनेवाले ज्ञान-साधनों को भी छोड़ देते हैं।

स श्रेयसामपि विभुर्भगवान् यतोऽस्य,

भावस्वभावविहितस्य सतः(फ्) प्रसिद्धिः ।

देहे स्वधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे,

व्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः ॥ 49॥

भावस्वभा+ वविहितस्य, स्वधा+ तुविगमेऽ+ नुविशीर्+ यमाणे

समस्त कर्मों के फल भी भगवान ही देते हैं। क्योंकि मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार जो शुभ कर्म करता है, वह सब उन्हीं की प्रेरणा से होता है। इस शरीर में रहनेवाले पंच भूतों के अलग-अलग हो जानेपर जब- यह शरीर नष्ट हो जाता है, तब भी इसमें रहनेवाला अजन्मा पुरुष आकाश के समान नष्ट नहीं होता।

सोऽयं(न्) तेऽभिहितस्तात, भगवान् विश्वभावनः।

समासेन हरेर्नान्य- दन्यस्मात् सदसच्च यत् ॥ 50॥

बेटा नारद ! संकल्प से विश्वकी रचना करने वाले षडैश्वर्य सम्पन्न श्रीहरि का मैंने तुम्हारे सामने संक्षेप से वर्णन किया। जो कुछ कार्य-कारण अथवा भाव-अभाव है, वह सब भगवान से भिन्न नहीं है। फिर भी भगवान तो इससे पृथक भी हैं ही।

इदं(म्) भागवतं(न्) नाम, यन्मे भगवतोदितम् ।

सं(ङ्)ग्रहोऽयं(वँ) विभूतीनां(न्), त्वमेतद् विपुलीकुरु ॥ 51॥

भगवान ने मुझे जो उपदेश किया था, वह यही 'भागवत' है। इसमें भगवान की विभूतियों का संक्षिप्त वर्णन है। तुम इसका विस्तार करो।

यथा हरौ भगवति, नृणां(म्) भक्तिर्भविष्यति ।

सर्वात्मन्यखिलाधारे, इति सङ्कल्प्य वर्णय ॥ 52॥

सर्वात्मन्+ यखिलाधारे

जिस प्रकार सबके आश्रय और सर्वस्वरूप भगवान श्रीहरि में लोगों की प्रेममयी भक्ति हो, ऐसा निश्चय करके इसका वर्णन करो।

मायां(वँ) वर्णयतोऽमुष्य, ईश्वरस्यानुमोदतः ।

शृण्वतः(श्) श्रद्धया नित्यं(म्), मायया ऽऽत्मा न मुह्यति ॥ 53॥

वर्णयतोऽ+ मुष्य, ईश्वरस्या+ नुमोदतः

द्वारा किये हुए वर्णन का अनुमोदन करते हैं अथवा श्रद्धा के साथ नित्य श्रवण करते हैं, उनका चित्त माया से कभी मोहित नहीं होता।

॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

द्वितीयस्कन्धे ब्रह्मनारदसं(वँ)वादे सप्तमोऽध्यायः॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥